Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-12, Issue-1, June-2018

चन्देल वंश में शैव धर्म का विकासः एक अध्ययन

विशाल विक्रम सिंह
शोधार्थी
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.),
ई–मेलः veesuthakur1990@gmail.com मो0 नं0:– 7049744841

समाज को प्रभावित करने वाले कारकों में धर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से ही धर्म मनुष्यों के जीवन को प्रभावित करता रहा है। वर्तमान में विश्व में अनेक धर्मों का उदय हुआ है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ अधिकां"ा धर्मों का संगम देखने को मिलता है। इनमें शैव धर्म, वैष्णव धर्म, शाक्त धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, इसाई धर्म, सिक्ख धर्म, पारसी धर्म शामिल हैं। गहन अध्ययन करने से इन धर्मों से सम्बन्धित उपधर्मों की भी जानकारी मिलती है। मानव समाज में धर्म की महत्ता होने के बाद भी धर्म की उत्पत्ति के विषय पर विद्वानों में मतभेद है। जिस प्रकार समय के विषय में कुछ नहीं कह सकते, कि इसका प्रारम्भ कब हुआ ? इसी प्रकार धर्म का उल्लेख करने में भी कठिनाई होती है। सरल शब्दों में धर्म ईश्वर के प्रति एक आस्था है, जिसमें मनुष्य एक अलौकिक शक्ति के प्रति विश्वास बनाये रखता है। यह अलौकिक शक्ति सभी धर्मो में उभयनिष्ठ कारक होती है। कहीं न कहीं समस्त धर्म किसी अतिसंवेदी शक्ति के प्रति सम्मान प्रकट करते है। इस प्रकार विश्वास एवं संस्कार धर्म के दो मुख्य भाग होते है। इसके द्वारा प्रतीकों के माध्यम से ईश्वर रूपी शक्ति की आराधना की जाती है एवं विश्वास रखा जाता है कि मानव समाज का अहित होने से यह शक्ति मनुष्यों की रक्षा करेगी। धर्म का अर्थ सभी धर्मों में अलग–अलग होता है। हिन्दू धर्म में जीवन के दायित्वों अधिकारो के सही रूप में निर्वहन को ही धर्म कहा गया। बौद्ध धर्म में बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करना धर्म है। जैन धर्म में तीर्थकरो की शिक्षाओं द्वारा मानव जीवन को शुद्ध रखने की प्रक्रिया को धर्म कहते है। इसी प्रकार अन्य धर्मो में भी धर्म की व्याख्या भिन्न रूपों में की गयी है। निनियन सम्राट ने यह स्वीकार किया है, कि यदि आप मानव जीवन और उसके इतिहास को समझना चाहते हैं, तो उसके धर्म को समझना आवश्यक है।[1]

धर्म शब्द की उत्पत्ति 'घृ' धातु से हुयी है, जिसका अर्थ धारण करना होता है। अर्थात धर्म वह है, जो समस्त विश्व को धारण करता है। धर्म की परिभाषा भारतीय एवं विदेशी विचारकों ने अपने–अपने शब्दों में प्रस्तुत की है। भारत में धर्म की उत्पत्ति अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के मंत्रों में यह शब्द लगभग छप्पन बार प्रयोग किया गया है। इसकी उत्पत्ति मनुष्य की कल्पनाओं से प्रारम्भ होती है। धर्म मूलतः सामाजिक प्रक्रिया है, जो सामूहिक रूप से भावनाओं को प्रकट करता है। धर्म का प्रमुख कार्य सामाजिक एकता को समृद्धि करना है। मनुस्मृति में

''समस्त वेदों को ही धर्म का मूल कहा गया है।'' श्रीमद्भागवत् के अनुसार'' जो कुछ वेद में कहा गया हैः वही सत्य है तथा इसके विपरीत सब असत्य है।'' महर्षि कणाद एवं जैमिनी सूत्र भी वेद को ही धर्म मानते है। साथ ही साथ भारतीय विचारकों में डॉ. मैत्रा ने'' मूल्यों की सिद्धि में आस्था को धर्म कहा है।'' श्री अरविन्द के शब्दो में धर्म के अन्तर्गत परमपिता परमेश्वर की खोज करना होता है। जैन मार्ले के अनुसार धर्म की दस हजार परिभाषाएँ है, इनमें से कुछ व्यापक एवं कुछ संकीर्ण होती है। धर्म की वही परिभाषा अधिक उपयुक्त होती है, जो धार्मिक चेतना के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित हो। इसलिए डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी ने इन परिभाषाओं को ज्ञानमूलक, भावनामूलक, संकल्पमूलक, मूल्यसम्बन्धी एवं समाजशास्त्रीय परिभाषाओं में विभक्त किया है।[2] धर्म की परिभाषा को लेकर विदेशी विचारकों ने भी मत प्रस्तुत किये। प्रसिद्ध समाज शास्त्री फेयर चाइल्ड के अनुसार ''उच्च अलौकिक शक्ति एवं शक्तियों के विचारों एवं मानव से उनके सम्बन्धों की धारणाओं के आस–पास निर्मित सामाजिक संस्था धर्म है।'' इसी प्रकार जॉनसन ने भी अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि'' कम या अधिक रूप में धर्म उच्च अलौकिक क्रम या प्राणियों, शक्तियों, स्थानों एवं अन्य सत्वों के सम्बन्ध में विश्वासों एंव व्यवहारों की एक स्थिर प्रणाली है।'' इन विचारकों के अतिरिक्त पाश्चात्य विचारकों में फिलिन्ट, जेम्स, गैलवे आदि पाश्चात्य विचारकों एवं दर्शन शास्त्रियों ने धर्म की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम बतलाया है, जिसके नशे में जनता को सुला दिया जाता है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में धर्म के अर्थ को बतलाया गया, जिसमें व्यक्ति का ऐसी उच्चतर अदृश्य शक्ति पर विश्वास करता है जो उसके भविष्य पर नियंत्रण करती है और जो उसकी आज्ञाकारित, शील, सम्मान तथा आराधना का विषय है। इसी विषय पर जॉन डिवी ने लिखा है कि ऐतिहासिक धर्म लोगों की सामाजिक संस्कृति की स्थितियों से, जिसमें वे पैदा होते है एवं रहते है, सम्बद्ध रहा है।[3] इसलिए एरिकफ्रेम ने धर्म को निरंकुश तथा मानवीय धर्म में विभक्त किया है। इसमें ईश्वरीय शक्ति के समक्ष समर्पण निरंकुश धर्म और मनुष्य एवं उसकी शक्ति पर आधारित धर्म मानवीय धर्म कहलाता है। ये परिभाषाएँ प्रस्तुत करने से यह प्रतीत हो जाता है कि धर्म की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। आगस्त काम्ते ने धर्म के वैज्ञानिक रूप को प्रस्तुत किया। इसकी परिभाषा पर कैण्ट एवं फिटशे नामक विचारक भी एकमत न हुए। जहाँ कैण्ट ने धर्म को सदाचार कहा वहीं फिटशे ने इनका विरोध करते हुए धर्म को व्यावहारिकता से अलग बतलाया है।[4] धर्म को उद्भव एवं विकास के विषय पर आधुनिक मानव की जिज्ञाशाएँ बढ़ गयी हैं। अतः इसके उद्भव पर भी अनेक विद्वानों ने भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये। हीगल, जेम्स फ्रेशर तथा मेक्डोनल धर्म की उत्पत्ति जादू–टोने से मानते है, परन्तु कालान्तर में इसके असफलता के कारण ईश्वर की अवधारणा स्वीकार की गयी। अतः टाइलर महोदय ने जीववाद के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया एवं यह मान्यता प्रकट की कि सूर्य, तारे, वृक्ष, नदियाँ, बादल, हवा सभी में जीव है।[5] इस प्रकार देवताओं की कल्पना की गयी। इसको आगे बढ़ाते हुए अनेक देवता के स्थान पर एक देवता की अवधारणा स्वीकार हुयी। कुछ विचारकों ने भय को धर्म की उत्पत्ति का कारण माना है। दुर्खीम के अनुसार धर्म की उत्पत्ति से पूर्व ही धार्मिक कर्मकाण्डों एवं रीति–रिवाजों का उद्भव हुआ। वर्तमान में धर्म के विभिन्न रूप प्राप्त होते है। मैक्समूलर द्वारा वर्णित कथन सत्य है कि

धर्म का अध्ययन तब तक अधूरा है, जब तक इसे भारत के सन्दर्भ में न देखा जाये।[6] हिन्दू धर्म प्राचीन काल में ही भारतीय समाज को तीव्रता से प्रभावित कर रहा है।

मनोवैज्ञानिकों ने भी धर्म की उत्पत्ति के विषय में अपने मत प्रस्तुत किये है। फ्रायड के मतानुसार'' ईश्वर की उत्पत्ति ही इस कारण हुयी कि मनुष्य अपनी प्रतिभा में ही देवों की सृष्टि इस उद्धेश्य से करने को लिए बाध्य हुआ कि वह उन्हें अपने पिता के स्थान पर मान्यता दे सके तथा अपनी बाल्यकालीन आश्रय भावना को आधार प्रदान कर सके।[7] कार्लजुँग तथा थियोडोर श्रोडर भी फ्रायड के सिद्धान्त का समर्थन करते है। डॉ. आर.के. त्रिपाठी के अनुसार'' यह सर्वत्र स्वीकार किया गया है कि धर्म का प्रारम्भ कुछ रहस्यमयी शक्तियों के एहसास से हुआ है, जिसे ओटो ने अत्यधिक रहस्यमयी (Mysterium Tremendum) कहा है।[8] भारत वर्ष में पूर्व मध्यकालीन साहित्यों में चन्देल वंश का उल्लेख अवश्य होता है। चूँकि इन्होने धार्मिक सद्भावना को प्रस्तुत करते हुए अनेकों मंदिरों का निर्माण करवाया। इनकी धार्मिक नगरी के रूप में प्रसिद्ध खजुराहो वर्तमान में छतरपुर, म.प्र. में स्थित है। इस काल में विभिन्न धर्मो को अंगीकार किया गया। पाषाण काल से प्रारम्भ करके पूर्वमध्यकाल में इस क्षेत्र की धार्मिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। धीरेन्द्र वर्मा कृत हिन्दी साहित्य कोशानुसार धर्म सृष्टि प्रचारार्थ उत्पन्न पाँच पदार्थो में से है, जो ब्रज को वक्षस्थल के दाहिने भाग से उत्पन्न हुआ है एवं धर्म ही प्रथम देवता है, जिन्होने दक्ष की तेरह कन्याओं श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तृष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा ह्री तथा मूर्ति) से विवाह किया।[9] ये तेरह वृत्तियाँ मानवोचित हैं जिन्हें धर्म कहा गया। धर्म को 'वृष' के आकार का कहा गया, जिसके चार पैर, गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति है और ये चारों ही किसी वस्तु या व्यक्ति का धर्म होता है।[10]

शैव धर्म का सम्बन्ध शिव से बतलाया गया है। धर्म का विकास बाद में हुआ, परन्तु शिव से सम्बन्ध रखने वाले पुरातत्विक साक्ष्य पाषाण काल से मिलना प्रारम्भ हो जाते है। गत् वर्षो में मध्य प्रदेश के अधिकांश स्थानों के उत्खनन से प्रदेश में ऐसे अनेकों स्थल मिले जहाँ से पाषाण कालीन अवशेष प्राप्त हुए। छतरपुर से भी पाषाण कालीन एवं ताम्रपाषाण कालीन अवशेषों के साक्ष्य प्राप्त हुये हुए। ताम्रपाषाण कालीन पुरास्थलों के रूप महेश्वर, नवदाटोली, कायथा, नागदा, एरण, त्रिपुरी जैसे स्थल इस संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर पुरूष देवता का अंकन प्राप्त होता है।[11] इस पुरूष देवता के दोनो तरफ एक व्याघ्र, एक हाथी, एक गैंडा और एक भैंसा दिखाया गया है, साथ ही उसके सिंहासन के नीचे दो हिरन भी दिखाये गये है। इस आधार पुरूष देवता को पशुपति की संज्ञा दी गयी। चूँकि भगवान शिव का एक अन्य नाम पशुपति भी प्राप्त होता है। अतः इससे प्रारम्भिक कालों में शिव की उपासना के संकेत प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त पकी हुयी मिट्टी की अनेकों लघु स्त्री प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुयी हैं। इन अवशेषों में अनेकों पत्थर के लिंगों का अंकन भी प्राप्त हुआ है। जिससे अनुमान लगाया जाता है कि उस काल में लिंग पूजा का भी प्रचलन था।[12] लिंग मानव जनेन्द्रि है, जिसकी उपासना का प्राचीन सभ्य संसार में बहुत प्रचार था। आदिमानव के अप्रौढ़ विवेक ने मैथुन कर्म, पशुओं और धान्य की उर्वरता के बीच एक कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित कर दिया। चूंकि इसे उर्वरता से समेकित किया गया। इन्हीं कारणों से लिंगोपासना का उद्भव हुआ, जिसका एक रूप जनेन्द्रिय उपासना भी है।

जननेन्द्रियों की उपासना भारत वर्ष के अतिरिक्त भी होती थी। असीरिया में 'अशेरह' की उपासना की जाती थी, जिसका आकार स्त्री योनि के समान था। यह देवता 'बाल' एवं देवी अश्तोरेथ के संयोग का प्रतीत था। इसी प्रकार बेबीलोन एवं निनवेह में भी इस प्रकार के नमूने प्राप्त हुये है। ग्रीस में शिव का एक अन्य नाम डायनोसियस प्राप्त होता है, जो उर्वरा पृथ्वी का देवता है, एवं जिसकी गर्माहट और रसों से विशेषकर जीवन का संचार होता था।[13] मोहनजोदड़ों एवं अन्य स्थानों के उत्खनन से अनेकों पत्थर के छल्ले भी प्राप्त हुए है, जो सम्भवतः लिंग–योनि के जुड़वा प्रतीकों में योनि का काम देते थे।[14] आरेल स्टाइन द्वारा खोजे गये साक्ष्यों के अनुसार मेसोपोटामिया की खुदाई में भारत वर्ष में निर्मित ताबीज, मिट्टी के बर्तन, देवदार का प्राप्त होना तथा भारत की खुदाई में मेसोपोटामिया की बनी बरमे से छिदी एक मिट्टी की टिकिया और अन्य वस्तुओं से यह सिद्ध होता है कि इनकी सभ्यताओं में घनिष्ठ सम्बन्ध अवश्य रहा होगा।

वैदिक आर्यों के भारत वर्ष में प्रवेश की तिथि में विद्वानों में मतभेद रहा है। इनके प्रवेश के पश्चात भारत में लिंगोपासना को स्वीकार किया गया, क्योंकि इन्हें उर्वरता के देवता के रूप में प्रस्तुत किया गया था। इसलिए लिंगोपासना के मूल रूप को परिवर्तित करके इसे रूद्र के साथ समेकित किया गया। शिव का एक अन्य चित्र ताम्रपट पर प्राप्त हुआ है, जिसमें वे यात्री के रूप में प्रदर्शित है तथा उनके सम्मुख दो सर्प हैं और उनके गले में सर्प की एक माला भी है।[15] तत्कालीन समय में लिंग का स्थान वैदिक देवता रूद्र ने प्राप्त किया एवं स्त्री देवी के रूप में अम्बिका के रूद्र की भगिनी सिद्ध किया गया।[16] वैदिक कालों में शिव का विभिन्न रूपों में वर्णन प्राप्त होता है, एवं इनसे सम्बन्धित कथानकों का भी उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में शिश्नदेवाः शब्द का दो बार प्रयोग हुआ। इसमें शिव का रूद्र नाम से उल्लेख है। ये प्रारम्भ में मध्यम श्रेणी के देवता थे। ऋग्वेद में रूद्र से सम्बन्धित तीन सूक्त प्राप्त होते हैं। जबकि अन्य देवताओं के साथ उनका उल्लेख पचास से अधिक बार किया गया है। शिव के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि इनकी भुजा और अवयव दृढ़ एवं समृद्ध है, ओंठ सुन्दर हैं तथा बाल घुँघराले है, जिससे इन्हें कपर्दिन कहा गया है। उनका आकार आँखों को चौधिया देने वाला है।[17] ये आयुध भी रखते है जिससे पशुओं एवं मानवों का संहार करते है। इसी कारण ऋषियों ने अपने आयुधों को स्वयं से दूर रखने के लिए उनसे प्रार्थना की एवं पशुओं तथा मानवों की रक्षा करने का आग्रह भी किया। रूद्र का विभिन्न देवताओं के साथ सम्बन्ध दिखलाया। चूंकि इन्हें सहस्त्रों औषधियों का संरक्षक कहा गया है, जिससे इनका एक नाम महाभिषिक भी प्राप्त होता है। रूद्र का निकटतम सम्बन्ध मरूतों के साथ भी है जिनके वे पिता हैं तथा एक बार उनके लिए त्रयम्बक विशेषण भी आया है।[18] यहाँ पर त्रयम्बक का अर्थ तीन बहनों अथवा तीन माताओं वाला प्रतीत होता है, जो विश्व के तीन विभागों का द्योतक है।

आर्यों के द्वारा लिंगापासना को स्वीकार करके उसे रूद्र से समेकित किया गया। जिससे ऋग्वेद के साथ साथ उत्तर वैदिक काल में लिखित ग्रन्थों में भी शिव का उल्लेख प्राप्त होने लगा। इस काल में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, पुराण इत्यादि की रचना हुयी। सबसे प्राचीन ग्रन्थ के रूप में वृहदारण्यक उपनिषद में अन्य देवताओं के साथ रूद्र का नाम एक या दो बार ही मिलता है। परन्तु श्वेताश्वर उपनिषद में उनके नामों के विभिन्न रूप ईश, महेश्वर, शिव और ईशान प्राप्त होने से उनके उत्कर्ष का परिचय प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण[19] में

वर्णित कथन के अनुसार देवासुर संघर्ष में असुरों ने पृथ्वी, आकाश और द्यौ को तीन दुर्गों में परिणित कर दिया जो क्रमशः लोह, चाँदी और स्वर्ण के थे। इन्हें ध्वंश करने का श्रेय शिव को दिया जाता है। इस कथा का विस्तृत रूप महाभारत के कर्णपर्व में प्राप्त होता है। प्राचीन काल के उपनिषदों में उनसे सम्बन्धित उल्लेख मिलते हैं। मात्र श्वेताश्वर उपनिषद से उस काल के रूद्र की उपासना का संकेत प्राप्त होता है। मैत्रायणी उपनिषद में रूद्र का सम्बन्ध तमोगुण और विष्णु का सम्बन्ध सतोगुण से किया गया, साथ ही प्रश्नोपनिषद में रूद्र को परिरक्षिता की संज्ञा भी दी गयी।[20] विकास के क्रम में दार्शनिक विचारधाराओं का उद्भव हुआ। जिससे बहुदेववाद की परिकल्पना के स्थान पर एकेश्वरवाद को अपनाया गया। एकेश्वरवाद के अंतर्गत परमब्रह्म की स्वीकार किया गया। विभिन्न देवों के स्थान पर समाज अलौकिक शक्ति के रूप में परमब्रह्म की पूजा करने लगा। चूँकि श्रौत सूत्र ब्राह्मण कर्मकाण्डों के सारांश मात्र हैं। अतः इनमें रूद्र की उपासना का सामान्य स्वरूप ही प्राप्त होता है। गृहसूत्रों में इनका अधिक विस्तृत वर्णन किया गया। शांख्यायन श्रौतसूत्र में सर्वप्रथम रूद्र की पत्नी का उल्लेख प्राप्त हुआ है, जिसमें रूद्र के स्त्री देवी का उल्लेख है, जिसे भवानी, शर्वानी, ईशानी, रूद्राणी और आर्गेयी भी कहा गया है।

शिव से सम्बन्धित कथाओं का उल्लेख पुराणों में भी प्राप्त होता है। सौर पुराण, मत्स्य पुराण, पद्म पुराण में शिव से सम्बन्धित कथाओं का उल्लेख मिलता है। मत्स्य एवं पद्म पुराण में मध्यप्रदेश के स्थानों का भी उल्लेख है, जिसमें महेश्वर तथा त्रिपुरा का नाम आता है। इसमें त्रिपुर को बाणासुर का नगर कहा गया है। मत्स्य पुराण[21] के अनुसार देवों के आग्रह पर असुरों के अभिमानी तथा उदण्ड होने के कारण शिव ने नर्मदा के तट पर स्थित महेश्वर नामक स्थान पर इन्हें समाप्त करने का निश्चय किया। बाणासुर को यह ज्ञात होते ही उसने भगवान शिव की उपासना की। जिससे प्रसन्न होकर शिव ने वरदान स्वरूप उसके तीन पुरों में से दो पुरों को ही ध्वस्त किया। जिसका एक अवशेष शैल पर्वत तथा दूसरा अवशेष अमरकण्टक पर्वत पर गिरा। शांख्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार यजुर्वेद के शत् रूद्रीय सूक्त में भी गणों का उल्लेख किया गया है। इन गणों को अघोषिन्यः, प्रतिघोषिन्यः, संघोषिन्यः तथा क्रण्याद (मृत मांस भक्षी) की उपाधियाँ दी गयी। इन उपाधियों के आधार पर इन्हें भूत–पिशाच की श्रेणी में रखा गया। चूँकि अर्थववेद में इन्हीं के निवारणार्थ रूद्र का आह्वाहन किया जाता था। अतः रूद्र को इनसे सम्बन्धित बतलाया गया है। अग्निपुराण में शिव की संज्ञा चण्डेश्वर से भी की गयी है। शत्रूद्रीय सूक्त के द्वारा शिव के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। इन्हें शिल्पकार, बढ़ई, लोहार, कुम्भकार, शिकारी, तथा जंगली लोगों का संरक्षक कहा गया है। उन्हें सेनाओं का प्रमुख तथा पशुओं के स्वामी की संज्ञा भी दी गयी है। अथर्ववेद में रूद्र को चिकित्सा शास्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें रूद्र को अग्नि और शिव के साथ प्रस्तुत किया गया है, जबकि भव एवं सर्व रूद्र से पृथक हुए दो देवता माने गये है।[22] परम पिता ने भव को व्रात्यों के पूर्वी क्षेत्र का रक्षक, सर्व को दक्षिणी क्षेत्र का रक्षक, पशुपति को पश्चिमी क्षेत्र का रक्षक उग्र को उत्तरी क्षेत्र का रक्षक, रूद्र को निचले क्षेत्र का तथा ईशान को मध्य क्षेत्र का रक्षक बताया था।

जहाँ अर्थववेद में प्राप्त होने वाले सात नाम पृथक देवताओं के थे, वहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में ये एक ही देवता से सम्बन्धित बतलाये गये। साथ ही एक अन्य नाम 'अशनि' भी उसमें जोड़ा गया। रूद्र के इन आठ नामों में सर्व, उग्र, रूद्र और अशनि इनके क्रोधी स्वरूप को एवं भव, पशुपति, महादेव, ईशान इनके सौम्य स्वरूप को प्रस्तुत करता है। श्वेताश्वर एवं अथर्वशिरा

उपनिषद के वर्णन से शिव की महिमा में वृद्धि होने का उल्लेख मिलता है। किसानों ने अपनी आस्तिक भावना में रूद्र शिव को परम ब्रह्म की संज्ञा दी एवं यह घोषित किया कि रूद्र ही सृष्टि के कर्ता–धर्ता हैं। महाकाव्य रामायण में शिव को उत्तर भारत का ही नहीं दक्षिण भारत का भी प्रसिद्ध देवता माना गया। उन्हें महादेव, शम्भू, भूतनाथ तथा त्रयम्बक कहा गया है।[23] सम्पूर्ण रामायण विष्णु से सम्बन्धित होने के बाद भी इसमें महादेव की महत्ता को स्वीकार किया गया है। महाभारत के विस्तार के साथ ही शिव की उपलब्धियों का वर्णन करके उन्हे विष्णु के बराबर स्थापित कर दिया। द्रोण पर्व में कृष्ण एवं अर्जुन के द्वारा जयद्रथ की हत्या के लिए पाशुपत शस्त्र को प्राप्त करना अतिआव"यक था अतः अर्जुन महादेव के पास गये। महाभारत के अधिकांश स्थानों से रूद्र को महादेव के रूप में प्रस्तुत किया गया एवं उन्हें असीम शक्तियों का संरक्षक भी कहा गया। इस प्रकार मोहनजोदड़ों सभ्यता से उत्तर वैदिक काल तक शिव का उल्लेख प्राप्त होने से उनकी उपासना का संकेत प्राप्त होता है। अतः भारत में निरन्तर इसके विकास का क्रम बढ़ता रहा एवं पूर्व मध्य काल तक इस धर्म ने विकास के नये आयामों का अंगीकार किया।

वैदिक काल के पश्चात भारत वर्ष का नया इतिहास प्रारम्भ होता है। इसे द्वितीय नगरीकरण की संज्ञा भी दी जाती है। इसके पीछे कई कारण प्राप्त होते हैं। लोहे की खोज ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन लाने में सहायता की। इसके अतिरिक्त इस काल में धार्मिक क्षेत्र में भी नये विचारों या सम्प्रदायों जैसे– बौद्ध धर्म, जैन धर्म, आजीवक सम्प्रदाय, अक्रियावादी सम्प्रदाय, उच्छेदवादी, नियतवादी, संदेहवादी सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। इन धर्मो के आगमन से धार्मिक कर्मकाण्डों से सम्बन्धित धर्मो के विकास में कमी आयी परन्तु शैव धर्म की उपासना इन कालों में भी होती रही। 600 ई.पू. से 600 ई. के मध्य में महाजनपद काल, मौर्य काल, मौर्योत्तर काल, गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल में शैव धर्म के विकास की चर्चा की गयी है। महाजनपद काल या बौद्ध काल में सम्पूर्ण भारत वर्ष सोलह महाजनपदों में विभक्त हो गया, जिसका वर्णन अंगुत्तर निकाय में प्राप्त होता है।[24] इन जनपदों में अवन्ति एवं चेदि जनपद अत्यन्त महत्वपूर्ण थे, जिनकी स्थिति मध्य प्रदेश में बतलायी गयी है। महात्मा बुद्ध के समय में अवन्ति का शासक प्रद्योत था, जिसे चंड प्रद्योत भी कहा जाता था। इस शासक का उल्लेख पुराणों में भी किया गया है। चूँकि अग्निपुराण में भगवान शिव को चंड या चंडेश्वर की उपाधि दी गयी है। इस आधार पर प्रद्योत के शैव मतावलम्बी होने का संकेत मिलता है। संस्कृत साहित्य में प्रद्योत को महासेन की उपाधि प्रदान की गयी है।[25] यह उपाधि स्कन्द से सम्बन्धित बतलायी गयी है। अतः तत्कालीन समाज में शिव एवं स्कन्द की उपासना के साक्ष्य प्राप्त होते है।

पाणिनी द्वारा रचित अष्टाध्यायी में कुछ वैदिक एवं उत्तर वैदिक देवताओं का उल्लेख किया गया है। इन देवताओं के नामों में भी सर्व, भव, रूद्र, इत्यादि के नाम प्राप्त हुए है, जिन्हें शिव से सम्बन्धित बतलाया गया है।[26] एक तरफ साक्ष्यों की कमी के कारण डॉ. आर.जी. भण्डारकर ने बुन्देलखण्ड में शैव धर्म के आगमन को अस्वीकार कर दिया। परन्तु दूसरी तरफ जंगलों में विचरण करने वाले व्रात्यों या उन समुदायों के जो आर्यो से सम्बन्धित नहीं थे एवं निशाद जनजाति से शिव का सम्बन्ध बतलाया है। इस प्रकार शिव को व्रात्यों, गणों जंगली जनजातियों का देवता बतलाया गया तथा इन्होने शिव की उपासना प्रारम्भ की। यदि

पुरातात्विक साक्ष्यों पर विचार किया जाये तो बुन्देलखण्ड के शैल चित्रों में शिव से सम्बन्धित त्रिशूल का अंकन प्राप्त हुआ है, जिससे इस क्षेत्र में शैव धर्म की उपस्थिति को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। मौर्य काल में भी शैव धर्म से सम्बन्धित साक्ष्य प्राप्त हुए। मेगस्थनीज द्वारा लिखित इंडिका में हेराक्लीज तथा डायनोसियस नामक देवता का उल्लेख मिलता है। ऐसा भी माना जाता है कि बौद्ध धर्म में दीक्षित होने से पूर्व सम्राट अशोक शैव धर्मावलम्बी था। मध्य प्रदेश से अशोक के अभिलेख प्राप्त होने से यह सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य का अंग था। पतंजलि द्वारा रचित महाभाष्य में भी शिव का उल्लेख किया गया है। भीटा से प्राप्त प्रथम शताब्दी ई. के पंचमुखी शिवलिंग पर ब्राही में नागश्री लेख प्राप्त होने से शैव मत में नाग सम्प्रदाय के समाहित होने का संकेत मिलता है। इस प्रकार दक्षिण पश्चिम में उज्जैन तक तथा उत्तर पश्चिम में तक्षशिला और औदुम्बर देश तक इसका प्रसार हो गया था।[27]

शैव धर्म के विषय में पुराणों में अत्यन्त ही व्यापक रूप में वर्णन किया गया है। लिंग पुराण, शिवपुराण, वामन पुराण को प्रमुखता दी गयी है। वामन पुराण में ही शैव धर्म के चार मतों शैव पाशुपत, कापालिक एवं कालादमन का वर्णन किया गया है। आगम शास्त्रों एवं गृहसूत्रों में इस मत का उल्लेख प्राप्त होता है। विदेशी शासकों के भारत आगमन का लक्ष्य भारत विजय के साथ–साथ यहाँ बसना एवं शासन करना भी था। इन शासकों ने भारत में बसने के लिए यहाँ के सम्प्रदायों को आत्मसात करना प्रारम्भ किया। विदेशी शासकों के सिक्कों पर शैव धर्म से सम्बन्धित अंकन के प्राप्त होने से यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन भारतीय समाज में शैव धर्म अधिक प्रचलित था। इन शासकों के आगमन के पश्चात नये सम्प्रदायों का भी जन्म हुआ, जिनमें अघोर सम्प्रदाय, अर्द्धनारीश्वर सम्प्रदाय के साक्ष्य प्राप्त हुए। हुविष्क के एक सिक्के पर प्राप्त अंकन में शिव के हाथ में चक्र के साथ त्रिशूल होने से हरिहर की परिकल्पना का उदय हुआ। गुप्त काल प्रारम्भ होते–होते शैव एवं वैष्णव धर्म का विकास तीव्र गति से हुआ। जिस प्रकार पूर्व गुप्त काल में शैव धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ। उसी प्रकार गुप्त काल में वैष्णव धर्म को राजाश्रय प्रदान किया गया। परन्तु अन्य धर्मो के प्रति इन शासकों ने सद्भावपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। इस काल में शिव से सम्बन्धित स्थापत्य एवं विभिन्न प्रकार के लिंगो अर्थात एक मुखी चतुर्मुखी, पंचमुखी का निर्माण करवाया गया। इन शासकों के आगमन से पूर्व भारशिव नामक वंश का भी अस्तित्व था। नाम के अनुरूप ये शासक अपने कंधों पर शिवलिंग धारण करते थे। गुप्त शासको में समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त को शैव धर्म से प्रभावित बतलाया गया है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रसस्ति में इसके संगीत कला की प्रशंसा तुम्बरू से की गयी है, जो कि गांधार में तांत्रिकों द्वारा शैव धर्म के स्तम्भ के रूप में माने गये है। पी.सी. बागची ने भी महाभारत के आधार पर गान्धार देश में तम्बरू शिव के होने का उल्लेख किया है।[28]

साथ ही, चन्द्रगुप्त द्वितीय के संधि विग्राहिक मंत्री वीरसेन शाव के द्वारा उदयगिरि गुफा में शिव के मंदिर का निर्माण कराया। मथुरा स्तम्भ लेख में उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर नामक दो शिवलिंगों की स्थापना का वर्णन है। कुमार गुप्त प्रथम के मंत्री एवं बलाधिकृत पृथ्वीसेन द्वारा शिव मंदिरों के दान दिये जाने का भी उल्लेख है। मध्य प्रदेश के विभिन्न स्थानों जैसे शंकरगढ़ भूमरा का शिव मंदिर, नचना कुठार का पार्वती मंदिर से मध्य भारत में शैव धर्म के विकास के साक्ष्य प्राप्त होते है। गुप्त कालीन साहित्यों में भी शैव मत का वर्णन किया गया, जिसमें

कालिदास कृत मेघदूत, कुमारसम्भव प्रमुख है। शिव कालिदास के भी प्रिय थे, इसलिए उनकी कृतियाँ शिव की उपासना से प्रारम्भ होती है। गुप्तों के समकालीन शासकों में मग शासक बल्लभी के मैत्रक, मौखरी शासक, वाकाटक नरेश, शालंकायन, नल कदम्ब आदि वंशो के शासकों द्वारा लिखित अभिलेखों में शिव का किसी न किसी रूप में उल्लेख हुआ है। जिसके आधार पर इन शासकों को शैव धर्म का समर्थक कहा जाता है।

गुप्त शासकों के पश्चात् शैव धर्म का विकास तीव्र हो गया। शक्ति के देवता होने से भारतीय शासकों के द्वारा शैव धर्म को अधिक प्रश्रय प्रदान किया गया। शासकों ने शिव से सम्बन्धित उपाधियाँ भी धारण करना प्रारम्भ कर दी। बांसखेड़ा ताम्र पत्र में हर्ष को 'परममाहेश्वरोमाहेश्वइव' की उपाधि से सम्बोधित किया गया एवं ह्वेनसांग ने भी वाराणसी को शैव धर्म का केन्द्र बताते हुये वहाँ लगभग सौ शिव मंदिर तथा 1000 से अधिक शैव धर्मानुयायी होने की बात प्रस्तुत की है।[29] तत्कालीन अभिलेखों में शिव को विभिन्न नामों से भी सम्बोधित किया गया। कलचुरि अभिलेख में इन्हे परमब्रह्म, देवदेव, तथा जगतगुरू एवं भेड़ाघाट अभिलेख में कल्याणपति तथा भालेन्दु की संज्ञा दी गयी। राजपूतों द्वारा स्थापित अधिकांश अभिलेखों का प्रारम्भ 'ओम नमः शिवाय' से किया गया एवं उन्हें नीलकण्ठ, महादेव, पशुपति, उमापति, सदाशिव, परममाहेश्वर, अर्द्धनारीश्वर, रामेश्वर, केदारेश्वर नामों से सम्बोधित किया गया। इस काल के शासकों द्वारा प्रचलित सिक्कों तथा स्थापत्यों में शिव का अंकन शैव धर्म की प्रतिष्ठा को प्रस्तुत करता है। चन्देल शासकों ने शैव धर्म के विकास में पूर्ण योगदान दिया। इन्होंने स्थाण्वीश्वर से कन्नौज तक एवं बुन्देलखण्ड के खजुराहो कालिंजर तक अनेकों शैव मंदिरों का निर्माण करवाया। इस काल में शैव धर्म का विभाजन भी हो गया। वीरशैव या लिंगायत तथा कश्मीरी शैव सम्प्रदाय का प्रारम्भ भी यहीं से हुआ।

प्रारम्भ से ही शैव धर्म उत्तर एवं मध्य भारत में प्रचलित था। चन्देल वंश के समय कालिंजर को नीलकंठ शिव का निवास स्थान कहा जाता था। यशोवर्मन के पश्चात् इसके उत्तराधिकारी धंग के काल से शैव धर्म को चन्देलों द्वारा राजकीय संरक्षण प्रदान किया गया। धंग के काल में निर्मित विक्रम संवत 1059 (1002–03) ई. के खजुराहो अभिलेख[30] 'ओम नमः शिवाय' से प्रारम्भ है एवं शिव के विभिन्न रूपों रूद्र, दिगम्बर, शूलधर, महेश्वर एवं पशुपति का वर्णन है। साथ ही, शम्भू मंदिर का भी वर्णन किया गया है, जिसमें धंग ने दो शिवलिंगों की स्थापना की थी। चन्देल शासकों की एक उपाधि 'परममाहेश्वर' भी थी। इस अभिलेख में वर्णित मंदिर को खजुराहो के विश्वनाथ मंदिर के रूप में स्वीकार किया गया। अभिलेखानुसार धंग ने शिव का ध्यान करते हुए प्रयाग में जल समाधि धारण की, जो उसके शैव धर्म की आस्था का प्रतीक है। विश्वनाथ मंदिर के समीप वैद्यनाथ नामक एक अन्य मंदिर भी शिव को समर्पित है, जो विक्रम संवत 1058 (1001–02) का है एवं ग्रहपति कुटुम्ब के कोकल्ल ने निर्मित करवाया था।[31] परमर्दिदेव ने भी शिव का गुणगान करते हुए अपने विश्वास को प्रस्तुत किया। चन्देल शासकों द्वारा खजुराहो में शैव धर्म से निर्मित विभिन्न स्थापत्यों का निर्माण करवाया। इन स्थापत्यों में कन्दरिया महादेव मंदिर स्थापत्य जगत का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसके अतिरिक्त खजुराहों का मतंगेश्वर एवं दूल्हादेव मंदिर भी भगवान शिव को समर्पित है। खजुराहों के साथ–साथ चन्देल शासकों द्वारा अजयगढ़ महोबा में भी शैव मंदिरों का निर्माण करवाया गया।

चन्देल कालीन अभिलेखों में शिव का उल्लेख अनेकों बार मिलता है। अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर आगर के निकट स्थित बटेश्वर के शिव मंदिर का निर्माण परमर्दिदेव के मुख्यमंत्री सलक्क्षण के द्वारा करवाया गया।[32] कालिंजर के नीलकंठ मंदिर की गुफा के द्वार पर काले पत्थर पर संस्कृत भाषा में एक लेख प्राप्त हुआ है, जिसमें परमर्दिदेव ने पुरारी अर्थात शिव के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है।[33] अजयगढ़ से प्राप्त प्रस्तर स्तम्भ पर कायस्थ परिवार से सम्बन्धित सुभद्र द्वारा शिव (केदार) के लिए एक मंदिर निर्मित कराने का वर्णन है, जो चन्देल शासक के द्वारा मंत्री एवं कोषधिकाराधिपति नियुक्त किया गया था। इसके अतिरिक्त देवगढ़ प्रस्तर अभिलेख, महोबा अभिलेख, कालिंजर अभिलेख तथा खजुराहो अभिलेखों का प्रारम्भ ''ओम ओम नमः शिवाय'' से किया गया है। बुन्देलखण्ड में शैव धर्म के कापालिक सम्प्रदाय का महत्व अधिक था। कृष्ण मित्र द्वारा रचित प्रबोधचन्द्रोदय में भी इसका उल्लेख किया गया है। खजुराहो स्थापत्य पर बने कामुक अलंकरण समाज में कापालिक सम्प्रदाय की महत्ता को प्रस्तुत करते हैं। चन्देलों के काल में छतरपुर जिले में स्थित खजुराहों को धार्मिक राजधानी बनाया गया। इनमें शैव धर्म से सम्बन्धित मतंगेश्वर मंदिर प्रारम्भिक काल का है। श्रीकृष्ण मित्र के अनुसार इसका निर्माण यशोवर्मन के पिता हर्ष ने प्रारम्भ कराया था। इसके अतिरिक्त खजुराहो स्थित विश्वनाथ, कन्दरिया एवं दूल्हादेव मंदिर भी भगवान शिव के निवास स्थल का अद्भुत उदाहरण है। इनका निर्माण काल क्रमश 975–1000ई. 1025–1050 ई. तथा 1100 से 1150 ई माना गया है। चन्देल राजधानी महोबा में निर्मित सभी हिन्दू मंदिर पूर्णतः नष्ट हो गये, परन्तु कनिंघम महोदय ने शिव मंदिर से सम्बन्धित अवशेष प्राप्त किये तथा शिवलिंग टुकड़े (अघ्र) के साथ काले पत्थर से निर्मित बैल की प्रतिमा को भी पहचाना।[34] इसके अतिरिक्त महोबा से दो मील दूर राहिल गाँव में भी एक शिव मंदिर की पहचान की गयी। स्तम्भो पर निर्मित मंडप बनाकर मंदिर के विस्तार का श्रेय चन्देल शासकों को ही दिया जाता है। अजयगढ़ में स्थापित चार में से तीन मंदिर शिव को समर्पित हैं। खजुराहो मंदिर समूह में शिव के अन्य रूपों का अंकन भी प्राप्त होता है। इन मंदिरों के आलों में शिव को भद्र रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त शिव एवं पार्वती की स्थानक मुद्रा प्रतिमा, ललितासन मुद्रा प्रतिमा तथा चतुर्भुजी शिव की प्रतिमाएँ प्राप्त हुयी है।

पूर्वमध्य काल में शिव मंदिरों में लिंगोपासना को अधिक महत्व दिया गया। खजुराहो स्थापत्य में अधिकांश स्थानों पर शिव पूजन का अत्यन्त ही मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया गया है। चन्देलों द्वारा काले पत्थर, बलुआ पत्थर, संगमरमर से निर्मित ि"ावलिंगों से लिंगोपासना का महत्व दिखता हैं इसके अतिरिक्त मानव मुख के साथ निर्मित लिंग चन्देल राज्य में प्राप्त होते है। कालंजर के नीलकंठ महादेव मंदिर के शिवलिंग में चाँदी के नेत्र निर्मित कराये गये थे। इस काल में शिव के लिंग रूप की उपासना अधिक हुयी परन्तु मानव रूप में इनके पूजन का उदाहरण बहुत कम प्राप्त होता है। खजुराहो के दूल्हादेव मंदिर के प्रवेश द्वार पर मध्य में शिव के मानव रूप का अंकन है इसके अतिरिक्त महादेव मंदिर एवं शिव विश्वनाथ मंदिर में भी इसके उदाहरण प्राप्त हुए है। शिवसागर झील के तट पर बीस व्यक्तियों के द्वारा शिव की उपासना का अंकन किया गया है। इनमें ग्यारह एक तरफ एवं नौ दूसरे तरफ खड़े हैं। साथ ही लक्ष्मण मंदिर के पीछे एक अन्य पूजन का दृश्य अंकित हैं, यह भी लिंगोपासना से सम्बन्धित है। विश्वनाथ मंदिर के प्रदक्षिणापथ एवं अर्द्धमंडप के छज्जे पर लिंगोपासना करते हुए व्यक्ति को दिखलाया गया है जो मंत्रोच्चारण करता हुआ प्रस्तुत किया गया है। कन्दरिया मंदिर के दृश्य में

बारह गन्धर्वो के द्वारा लिंग पूजा करते हुये अंकन किया गया जो हाथों में फूलों की माला धारण किये है। ये दृश्य तत्कालीन समाज के पूजन क्रिया को प्रस्तुत करते है। ये सभी दृश्य एक दूसरे से लिंग पूजा के माध्यम से सम्बन्धित हैं।

शैव धर्म का उद्भव आद्यैतिहासिक काल से माना गया है। समय के साथ इस धर्म में अनेकों परिवर्तन हुए तथा यह धर्म विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। शिव के साथ शक्ति को स्थापित करने से इन्हें शक्ति का देवता भी माना गया। जिससे अधिकांश राजवंशों ने इस धर्म को राजाश्रय प्रदान किया एवं इनसे सम्बन्धित उपाधियाँ भी धारण की। पूर्व मध्य काल में हर्ष ने भी शैव धर्म को प्रश्रय प्रदान किया तथा मरणोपरान्त उत्तरी एवं मध्य भारत के राजवंशों ने शैव धर्म को स्वीकार किया। चन्देल शासकों ने बुन्देलखण्ड में शैव धर्म का प्रचार–प्रसार किया। इनकी धार्मिक राजधानी छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो में शैव धर्म के विकास का अद्वितीय स्वरूप मंदिर स्थापत्य के रूप में देखने को मिलता है। यहाँ से शिव के विभिन्न रूपों का अंकन चन्देल कला की ही देन रही। गुप्त काल में मंदिर निर्माण के बाद स्तम्भों पर मंडप के निर्माण कर मंदिरों के विस्तार का श्रेय इन्हे ही दिया जाता है। शैव धर्म का विकास छतरपुर जिले में अधिक देखने को मिलता है, परन्तु सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में इस धर्म का प्रभाव होने के बाद भी छतरपुर जिला चन्देलों की धार्मिक स्थिति को प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, मैत्रेयी, रिलीजन एण्ड वोमेन इन इंडियन सोसाइटी, शोध प्रबन्ध, गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, 2012, पृ. 02।
2. त्रिपाठी, डॉ. आनन्द प्रकाश, धर्म दर्शन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि., जयपुर, 2009, पृ. 02।
3. व्यास, रामनारायण, धर्म दर्शन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1972, पृ. 25।
4. मैक्समूलर, धर्म की उत्पत्ति, अनुवादक ब्रह्मदत्त दीक्षित 'ललाम', ग्रन्थ विकास, जयपुर, 2001, पृ. 15–16।
5. व्यास, रामनारायण, पूर्वोक्त, पृ. 56।
6. शर्मा, मैत्रेयी, पृ. 7।
7. व्यास, रामनारायण, पृ. 60।
8. शाह, कीर्ति के, रिलीजियस हिस्ट्री ऑफ द बुन्देलखण्ड रीजन, शोध प्रबन्ध, डॉ हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर , म.प्र. 1976, पृ. 104।
9. मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोष, पृ. 848।
10. वही।
11. मार्शल, मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डस सिविलाइजेशन, पृ. 52।
12. तिवारी, श्रीधर, मध्यप्रदेश में शैव धर्म का विकास, शोध प्रबंध सागर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र. 1976, पृ 105।
13. फारनेल, कल्ट्स ऑद दी ग्रीक स्टेटस।
14. यदुवंशी, शैवमत, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना 1955, पृ. 27।
15. मिश्र, जयशंकर प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2006, पृ. 719–20।
16. वही, पृ. 32।
17. तिवारी, श्रीधर, पूर्वोक्त, पृ. 32।
18. वही, पृ. 76।
19. ऐतरेय ब्राह्मण, 1–4–6।

20. यदुवं"ाी, वही, पृ. 42।
21. मत्स्य पुराण, अध्याय 129–132 तथा 187–188।
22. बनर्जी, पी., अर्ली इंडियन रिलीजन्स, विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा.लि. दिल्ली, 1973, पृ. 30।
23. वही, पृ. 32।
24. श्रीवास्तव, के.सी. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो इलाहाबाद, 2014–15, पृ 109।
25. तिवारी, श्रीधर, वही, पृ. 110।
26. अग्रवाल, वी.एस., इंडिया एज नोन टू पाणिनी, इलाहाबाद, 1953, पृ. 35।
27. सहाय, शिव स्वरूप, प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2014, पृ. 93।
28. वही, पृ. 99।
29. वही, पृ. 102।
30. एपी इ., संस्करण –I, 137–43।
31. वही, पृ. 147–52।
32. मैत्रा, एस.के. द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977, पृ. 195।
33. वही, पृ. 197।
34. वही, पृ. 196।